REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 12 | SEPTEMBER - 2018

भारतीय जातिप्रथा और सामाजिक तथा राजनीतिक लोकतंत्र की पृष्ठभूमि तयार करने मे कांशीराम की भूमिका

डॉ. पी. एस. चंगोले
वाणिज्य विभाग प्रमुख, धनवटे नॅशनल कॉलेज, नागपूर.

संक्षेप

भारतीय जाति प्रथा के संबंध में निम्नलिखीत जानकारी संक्षेप में दी गई है।

- भारतीय जातिप्रथा अपनी तरह की एक विचित्र और रोचक संस्था है।
- धर्म की सीमा के बाहर हिन्दुओं का जो कुछ भी अपनापन है उसकी अनोखी अभिव्यक्ती यह जाति–प्रथा है।
- वास्तव में यह संस्था हिन्दू जीवन को दूसरों से इतना पृथक कर देती है कि सैंकडों भारतीय और विदेशी विद्वानों का ध्यान इस संस्था की ओर आकर्षित हुआ है।
- निश्चीत अर्थ में भारत जाति–प्रथा का आगार है और यहॉ शायद ही कोई सामाजिक समूह ऐसा हो जो इसके प्रभाव से अपने को मुक्त रख सका हो।
- मुसलमान और ईसाई तक भी इसके पंजे में फंस चुके है, चाहे उसका स्वरूप ठीक वैसा न हो जैसा हिन्दुओं मे है।
- अध्ययनकर्ता मानते है कि प्रारम्भ में जाति–प्रथा इतनी जटिल न थी जितनी कि बाद में हुई।
- समय के परिवर्तन के साथ इसका स्वरूप भी परिवर्तित होता गया और अन्त में यह न केवल जटिल बल्कि विचित्र भी हो गई।
- आज भारत वर्ष में लगभग 6000 से ज्यादा जातियॉ और उपजातियॉ है जैसे–अनुसूचित जातियॉ 1500, अनुसूचित जनजातियॉ 1000, अन्य पिछडी जातियॉ 3743।[4]
- श्री हट्टन का कथन है– विशेषज्ञों की एक सेना
- असंख्य विद्वानों ने इस जातिप्रथा के सम्बन्ध में अनेक गम्भीर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।
- इन विद्वानों में इतिहासकारों का उल्लेख सर्वप्रथम किया जा सकता है, जिन्होंने जातिप्रथा को ऐतिहासिक घटनाओं के साथ जोडकर विभिन्न युगों में इसमें होने वाले परिवर्तनों पर प्रकाश डाला है।
- इसके बाद भारत शास्त्रियों ने व्याख्यात्मक रूप में जाति–प्रथा को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।
- इतना ही नही, भारतीय जनगणना आयुक्त, अंग्रेज मिशनरियों तक ने भारतीय जाति–प्रथा को अछूता नही रखा और अपने–अपने दृष्टिकोण से जाति–प्रथा की विचित्रता और महत्ता को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

- इसके अध्ययन व विश्लेषण तथा निरूपण में अनेक त्रृटियॉ थी और इन त्रृटियों को दूर करने का उत्तरदायित्व स्वभावतः ही सामाजिक वैज्ञानिकों पर आ जाता है। फलतः अनेक समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने वैज्ञानिक आधार पर भारतीय जाति–प्रथा को समझने और समझाने का प्रयास किया है।

जाति की परिभाषा

- अंग्रेजी का 'Caste' शब्द पुर्तगाली शब्द Casta से बना है। जिसका अर्थ प्रजाति, जन्म या भेद होता है। इस अर्थ में जाति–प्रथा प्रजातीय या जन्मगत भेद के आधार पर एक व्यवस्था है।
- परन्तु भारतीय जाति–प्रथा प्रजातीय या जन्मगत भेद इस आधार पर नही समझी जा सकती

रॉबर्ट बीरस्टीड

- जब वर्ग–प्रथा का ढॉचा एक या अधिक विषयों पर पूर्णतया बन्द होता है तो उसे जाति–प्रथा करते है।[5]

सर हरबर्ट रिजले

जाति परिवारों या परिवारों के समूह का एक संकलन है जिनका कि एक सामान्य नाम है, जो एक काल्पनिक पूर्वज, मानव का देवता से एक सामान्य वंश–परम्परा या उत्पत्ति का दावा करते है, एक ही परम्परात्मक व्यवसाय को करने पर बल देते है और एक सजातीय समुदाय के रूप में उनके द्वारा मान्य होते है जो अपना ऐसा मत व्यक्त करने के योग्य है।[6]

ब्लण्ट

''एक जाति एक अन्तर्विवाही समूह या अन्तर्विवाही समूहों का संकलन है। जिसका एक सामान्य नाम है, जिसकी सदस्यता वंशानुगत है, जो अपने सदस्यों पर सामाजिक सहवास के सम्बन्ध में कुछ प्रतिबन्ध लगाती है, एक सामान्य परम्परागत पेशे को करती है या एक सामान्य उत्पत्ति का दावा करती है और सामान्य तथा एक समरूप समुदाय को बनाने वाली समझी जाती है''[7]

केतकर एस. व्ही.

''जाति एक सामाजिक समूह है जिसकी दो विशेषताए है –

1) जाति की सदस्यता उन व्यक्तियों तक ही सीमित है जोकि उस जाति–विशेष के सदस्यों से ही पैदा हुए है और इस प्रकार उत्पन्न होने वाले सभी व्यक्ति जाति में आते है,
2) जिसके सदस्य एक अविच्छिन्न सामाजिक नियम के द्वारा अपने समूह के बाहर विवाह करने से रोक दिए गए है''[8]

बोगल के जाति–प्रणाली के विश्लेषण के आधार पर

सर्वश्री डूमां और पोकाक ने जाति–प्रणाली की परीभाषा इस प्रकार की है –

''एक समाज जाति–प्रणाली से प्रभावित है, यदि वह समाज परस्पर विरोधी अनेक समूहों में बॅटा हुआ है, जो वंशानुगत रूप से विशेषीकृत है और संस्तरण के आधार पर श्रेणीबध्द है – यदि, सिध्दान्तःप्रणाली न नए सदस्यों को स्वीकार करती है और नही रक्त–सम्मिश्रण तथा पेशों में परिवर्तन को ही''[9]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर अन्तिम रूप में हम कह सकते है कि जाति मुख्यतः जन्म के आधार पर सामाजिक संस्मरण और खण्ड–विभाजन की वह गतिशील व्यवस्था है जो खाने–पीने, विवाह, पेशा और सामाजिक सहवासों के सम्बन्ध के अनेक या कुछ प्रतिबन्धों को अपने सदस्यों पर लागू करती है।

- इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि जाति–व्यवस्था गतिशील है और इसके प्रतिबन्ध भी अन्तिम नही है।
- यही कारण है कि जाति की कोई अन्तिम परिभाषा प्रस्तुत करना वास्तव में कठिन है।

जाति–प्रथा की प्रमुख विशेषतायें

एन. के. दत्ता के अनुसार

1) एक जाति के सदस्य जाति के बाहर विवाह नही कर सकते,
2) प्रत्येक जाति में दूसरी जातियों के साथ खाने पीने के सम्बन्ध में कुछ न कुछ प्रतिबन्ध होते है।
3) अधिकतर जातियों के पेशे निश्चित है।
4) जातियों में एक उॅच–नीच का संस्मरण है, जिसमें ब्राह्मण जाति की स्थिति सर्वमान्य रूप से सबसे उपर है।
5) जन्म ही एक व्यक्ति की जाति को जीवनपर्यन्त निश्चित करता है। केवल जाति के नियमों को तोडने पर उसे जाति से बहिष्कृत किया जा सकता है, नही तो एक जाति से दूसरी जाति में जाना सम्भव नही है,
6) सम्पूर्ण व्यवस्था ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा पर निर्भर है।[10]

डॉ. घुरिये के अनुसार

1. समाज का खण्डात्मक विभाजन –

भारतीय जाति–प्रथा ने हिन्दू समाज को विभिन्न खण्डों में विभाजित कर दिया है और खण्ड के सदस्यों की स्थिति, पद, स्थान और कार्य भी सुनिश्चित है।

2. संस्मरण –

जाति–प्रथा निर्धारित विभिन्न खण्डों में उंच–नीच का एक संस्मरण या चढाव उतार होता है और इसमे, परस्पराओं के अनुसार प्रत्येक जाति का स्थान जन्म पर आधारित होता है। इस संस्मरण में सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मणें की स्थिती होती है, इसके बाद क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का स्थान क्रमशः निम्न होता गया है। यह संस्मरण मुख्यतः जन्म पर आधारित होने के कारण बहुत–कुछ स्थिर व दृढ है और इसी कारण साधारण तथा इस संस्करण में उंचे स्तर पर उठना कठिन अवश्य ही है।

3. भोजन और सामाजिक सहवास पर प्रतिबन्ध –

प्रत्येक जाति को दूसरी जाति के हाथ का बना भोजन खाने की आज्ञा नही है। ब्राह्मणों के हाथ का बना भोजन दूसरी सभी जातियों के सदस्य खा लेते है। सबसे अधिक प्रतिबन्ध अछूतो (अनुसूचित जातियां) के हाथ के बने भोजन पर है।

4. विभिन्न जातियों की सामाजिक और धार्मिक नियोग्यताये तथा विशेषाधिकार –

जाति–प्रथा की एक अन्य विशेषता छुआछूत के आधार पर विभिन्न जातियों को सामाजिक और धार्मिक निर्योग्यता या विशेषाधिकार प्रदान करना है। इस सम्बन्ध में सबसे अधिक विशेषाधिकार ब्राह्मणों को प्राप्त है और सबसे अधिक निर्योग्यतायें अछूतों के लिये है।

दक्षिण भारत में अछूतों की अवस्था वास्तव में दयनीय थी। वे उच्च जाति के लोगों को छूना तो दूर रहा, उनको अपनी शक्ल भी नही दिखा सकते थे। ट्रावन कोर, पूना आदि उसी प्रकार उनको न तो मन्दिरों में प्रवेश का अधिकार था– न स्कूलों में पढ़ने का, और न ही उन कुओं और तालबों से पानी भरने का जिनको कि उच्च जाति के लोग, व्यवहार में लाते थे। गॉवो में तो इस प्रकार के प्रतिबन्ध और भी कठोर होते थे और अछूतों को किसी भी प्रकार को सामाजिक तथा धार्मिक अधिकार प्राप्त नही होता था। गॉवो में अछूतों को बस्ती के बाहर रहना पड़ता था।

5. पेशों के अप्रतिबन्धित चुनाव का अभाव –

प्रायः प्रत्येक जाति कुछ पेशों को अपना परम्परागत पेशा मानती है और उसे छोडना उचित नही समझा जाता है।

इस प्रकार ब्राह्मण पुरोहित के काम को और चमार जूते बनाने के काम को ही करना ठीक समझते है। साधारणतः ऐसा ही होता है और जाति–प्रथा का नियम भी यही है। साथ ही साथ केवल जातियों का हो नही बल्कि उनके द्वारा किए जाने वाले पेशों में भी उंच–नीच होती है। जिन पेशों में एक व्यक्ति को अपवित्र

वस्तुओं के सम्पर्क में आना होता है, उन पेशों को नीचा माना जाता है। मल–मूत्र उठानेवाले और चमडे का काम करनेवाले तथा गन्दे कपडे धोने का काम करनेवाले नीच माने जाते है। इनके विपरीत धर्म से सम्बन्धित समस्त कार्य परम पवित्र माने जाते है और यही कारण है कि इन कार्यो को करनेवाले ब्राह्मणें की स्थिति जातीय संस्मरण में सर्वमान्य रूप में सबसे उपर है।

6. विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध –

प्रत्येक जाति में विवाह सम्बन्धी अनेक प्रतिबन्ध होते है। उनमें अन्तर्विवाह का नियम सबसे प्रमुख है। वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक जाति अनेक उपजातियों में विभाजित है और प्रत्येक जाति अन्तर्विवाही समूह है, अर्थात अपनी उपजाति से बाहर विवाह–सम्बन्ध स्थापित करने की आज्ञा नही है।

वेस्टमार्क जाति–प्रथा की इस विशेषता से इतने अधिक प्रभावित हुए है कि आपने अन्तर्विवाह को जाति–प्रथा का सार तत्व माना है।[11]

जातियों का वर्गीकरण

सर हरबर्ट रिजले ने सम्पूर्ण जातियों को सात भागों में विभाजित किया है –

1. जनजातीय स्वरूप

आधुनिक समय में अनेक भारतीय जनजातियां सभ्य समाज के सम्पर्क में आई है। इसका एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि आदिम जनजातियों ने जाति–प्रथा को भी अपना लिया है।

2. व्यवसायात्मक प्रारूप

वर्ण व्यवस्था में कर्म या व्यवसाय का अत्याधिक महत्व है और यह कहा जाता है कि वर्ण–व्यवस्था का आधारभूत सिध्दांत यह है कि जो जिस काम के लिये सबसे योग्य है उसे यही काम करने को किया जाये। फलस्वरूप हिन्दुओं में कर्म या पेशे के आधार पर तेली, बढई, लोहार, कुम्हार, मोची, धोबी आदि जातियां बन गई है।

3. साम्प्रदायिक स्वरूप

इस प्रकार की जातियों का उद्‌भव तब होता है जबकि एक सम्प्रदाय के सभी लोग एक देवता पर विश्वास करने लगते है और उसी सामान्य विश्वास के आधार पर अपने को एक जाति के रूप में धीरे–धीरे संगठित कर लेते है।

उदा। मुंबई के लिंगराज जाति। 12 वी शताब्दी में यह एक सम्प्रदाय था जो मनुष्यों की समानता में विश्वास करता था। परन्तु धीरे–धीरे उनका सम्प्रदाय अब एक अन्तर्विवाहित जातीय समूह बन गया है जिसकी सदस्य संख्या लगभग ढाई लाख है।

4. वर्णसंकरो द्वारा बनी जातियॉ

ये जातियॉ वर्णसंको द्वारा उत्पन्न है। मिश्र या वर्णसंक जाति का एक अति उत्तम उदाहरण देहरादून जिले में खास लोग है जो बहुत प्राचीनकाल में राजपुत या ब्राह्मणों तथा मंगोलियन लडकियों के अन्तर्विवाह के फलस्वरूप उत्पन्न हुए थे।

5. राष्ट्रीय प्रारूप की जातियॉ

श्री। रामकृष्ण गोपाल भंडारकर के अनुसार रहा एक जनजाति थी। जिसका प्राचीनकाल में दक्षिण में राजनीतिक एकाधिपत्य था। कालांतर में वे लोग महा–रट्टा कहलाने लगे और जिस भू–भाग पर वे रहते थे। वह महारट्टा कहलाया। इसे ही आजकल महाराष्ट्र कहते है।

6. देशान्तर गमन से बनी जातिया

कभी–कभी जीवन धारण सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने या अन्य किसी कारण से लोगों को अपना प्रदेश छोडकर दूसरे प्रदेश मे जाकर बस जाना होता है उस नये प्रदेश के विशिष्ट सामाजिक पर्यावरण की प्रक्रिया क्रियाशील होती है अर्थात उस नये प्रदेश के विशिष्ट सामाजिक पर्यावरण में सफलतापूर्वक रहने के लिये उन्हे अपने व्यवहार, विचार और आदतों को दूसरों के अनुरूप कर लेना पडता है।

7. रीति–रिवाजों से बनी जातिया

कुछ जातियां रीति–रिवाजों को भिन्नता के आधार पर बन जाती है। इस प्रकार की जातियों का सबसे उज्जवल उदाहरण जाट और राजपूतों का दोनों जातियां एक ही प्रजाति से बनी है। परन्तु अब ये दोनों पृथक जातियां है और आपस में विरोध भी करती है।

जाति और वर्ग

सर्वश्री मैंकाईवर तथा पेज के शब्दों में, सामाजिक वर्ग एक समुदाय का कोई एक भाग है जो सामाजिक स्थिति के आधार पर शेष से पृथक दिखता है।

सर्वश्री ऑगबर्न तथा निमकॉफ के मतानुसार, ''एक सामाजिक वर्ग उन व्यक्तियों का योग है, जिनकी की आवश्यक रूप से एक समाज–विशेष मे एक सी सामाजिक स्थिति हो।

सामाजिक वर्ग समाज का वह भाग है जिसके सदस्यों की कुछ विशेषता और सामान्य स्थितियां तथा कार्य होते है, जिसके आधार पर उनमें यह जागरूकता विकसित हो जाती है कि वे समाज के अन्य समूहों से भिन्न है।

सामाजिक वर्ग की विशेषताये

1) स्थिति समूहों का उतार और चढाव
2) उॅच–नीच की भावना
3) वर्ग चेतनता

जाति और वर्ग में अन्तर

1) जाति अन्तर्विवाही है, पर वर्ग नही
2) जाति में खान–पान का प्रतिबन्ध है, वर्ग में नही
3) जाति में पेशे निश्चित है, वर्ग में नही
4) जाति जन्म पर आधारित है, वर्ग नही
5) जाति बहुत–कुछ स्थिर है, वर्ग नही
6) जाति बन्द व्यवस्था है जबकि वर्ग में खुलापन है।

■ संक्षेप यह कहा जा सकता है कि भारतीय जाति–प्रथा एक बहुत कुछ स्थिर तथा रूढिवादी संस्था है और वह इस अर्थ में, कि यह प्रथा अपने सदस्यों पर एकाधिक नियमों व निषेधों को लादती है, और उनपर यह दबाव भी डालती है कि वे उनका पालन करे। व्यवहारिक रूप मे इन समस्त नियमा का अक्षरशः पालन न कभी दुआ है और न ही हो सकता है, फिर भी सैध्दान्तिक रूप में जाति के नियम व निषेध कठोर अवश्य ही है।

■ वर्तमान समय में इस कठोरता का सामना कठोरता से किया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप जाति के प्रभाव व निषेधात्मक शक्ति का ऱ्हास हो गया है और भी हो रहा है वास्तव में, आज जाति–प्रथा को प्रजातन्त्रीय आधार पर प्रतिष्ठित करने के उल्लेखनीय प्रयत्न हो रहे है। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप जाति प्रथा का परम्परागत स्वरूप बदल रहा है क्योंकि परिवर्तन ही प्रकृति व सामाजिक व्यवस्था का नियम है।

जाति प्रथा की उत्पत्ति

■ भारत में जातियों का भंडार है। जिधर देखो उधर जातियों का बोलबाला है। सभी व्यवहार जातियों के संस्कारोंसे प्रभावित होते है। भारत का सामाजिक विभाजन भी जाति के कारण ही हुआ है। भारतीय जाति–प्रथा एक अत्यंत जटिल संस्था है। एक शताब्दी के परिश्रम और सावधानीपूर्वक अनुसन्धान के पश्चात भी हम निश्चित रूप से यह नही कह सकते कि यह अनोखी सामाजिक संस्था अपने निर्माण और विकास में किन–किन अवस्थाओं की देन रही है।

■ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस संस्था के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन भी सबसे अधिक हुआ है।

वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि के लेखकोंसे लेकर अनेक युरोपीय और भारतीय विद्वानों तक ने इसके बारें में अध्ययन किए है और प्रत्येक ने अपना एक सिध्दान्त इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में बताया है।

जाति प्रथा की उत्पत्ति के प्रमुख सिध्दान्त

1. परम्परात्मक सिध्दान्त :

जाति–प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वैदिक साहित्य में सबसे पुरानी व्याख्या ऋग्वेद (10–99–12) और यजुर्वेद (31–11) के पुरूष सूक्त मे

'ब्राह्मणों स्य मुख..... पद्भ्यां शूद्रोजायत'

इस मन्त्र के अनुसार ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय बाहु से, वैश्य जांघ से और शूद्र पैर से पैदा हुए। इसी आधार पर प्रत्येक जाति की कार्य या पेशा भी निश्चित है। क्योंकि ब्राह्मण की उत्पत्ति मुख से हुई और मुख बोलने का साधन है, इस कारण ब्राह्मणों का कार्य अध्ययन करना शिक्षा देना आदि है, जिससे वेदों की रक्षा हो सके। बाहु शक्ति का द्योतक है, इसलिये क्षत्रियों का कार्य शक्ति से सम्बन्धित कार्य है, जैसे अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग करना, उनकी शिक्षा देना, सेना मे कार्य करना, जीवन और धन की रक्षा करना, जिससे कि समुचित राज्य–व्यवस्था स्थापित हो सके। उसी प्रकार वैश्यों का कार्य कृषि करना, व्यापार करना आदि है और पैरों से उत्पत्ति होने के कारण शूद्रों का कार्य ऊपर से तीन वर्णोकी सेवा करना है।

समीक्षा :

1) उपर्युक्त सिध्दान्तों को वैज्ञानिक आधारोंपर स्वीकार करना असम्भव है।
2) वैज्ञानिक युग में मनुष्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऐसी अलौकिक कल्पना पर हम विश्वास नही कर सकते।
3) आर्य–अनार्य के संघर्ष की कहानी ऋग्वेद मे लिखि गई तथा पराजित अनार्यो को शूद्र वर्ण का दर्जा दिया ऐसा आलोचक मानते है।

2. राजनीतिक सिध्दान्त

श्री. अबे डुबॉयस के अनुसार – जाति–प्रथा ब्राह्मणों के लिए और ब्राह्मणों के द्वारा बनाई हुई एक चतुर राजनीतिक योजना है जोकि ब्राह्मणों ने अपनी सत्ता को चिरस्थायी बनाए रखने के लिये रची थी। जाति मूलतः धर्म पर आधारित है और धार्मिक कृत्यों को करने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को है, इस प्रकार ब्राह्मणों ने अपनी प्रभुता को बनाये रखने के लिये धर्म का सहारा लिया और एक ऐसी योजना बनाई जिसमें अपना स्थान सबसे उपर रखा और उन लोगों को द्वितीय स्थान मिला।

इबेटसन और डॉ। घुरिये ने भी इस सिध्दान्त को स्वीकार किया है, विशेषकर इस अर्थ में कि इन विद्वानों ने यह भी माना है कि जाति–प्रथा की उत्पत्ति में ब्राह्मणों का एक अति सक्रिय योगदान रहा है। डॉ। घुटिये ने स्पष्ट ही लिखा है कि ''जाति–प्रथा इण्डो–आर्यन संस्कृति के ब्राह्मणों का बच्चा है जोकि गंगा और यमुना के मैदान में पला है और वहॉ से देश के दूसरे भागों में ले जाया गया है''[12]

1) "I may conclude that caste in India is a Brahmamic child of the Indo Aryun Culture, creadled in the land of the Ganga and Yamuna and thence transferred to their Parts of the Country." G.S.Ghurye Caste, Class and occupation Popular Book Depot, Bombay, 1961, Pg.172.

समीक्षा :

वास्तव में किसी भी सामाजिक प्रथा या प्रणाली या व्यवस्था को इस प्रकार चतुराई या कृत्रिम रूप में समाज के लोगों पर लादा नही जा सकता।

इतना अवश्य है कि इस प्रथा की उत्पत्ति और निरन्तरता को बनाये रखने में ब्राह्मणों का बडा हाथ रहा है।

3. धार्मिक सिध्दान्त

श्री. होकार्ट के मतानुसार समाज का विभाजन धार्मिक सिध्दान्तों और प्रथाओं के कारण हुआ है। उनके अनुसार जाति प्रणाली देवताओं को भेंट चढ़ाने का संगठन है।

समीक्षा :

श्री. होकार्ट यह भूल जाते है कि जाति–प्रथा एक सामाजिक संस्था है, पूर्णतया एक धार्मिक संस्था नही।

- श्री. होकार्ट ने अपने सिध्दान्त में देवताओंको बलि चढाने के धार्मिक कृत्य पर अत्याधिक बल दिया है। यह कहना गलत होगा कि बलि के प्रभाव के कारण ही जाति–प्रथा की उत्पत्ति हुई है या हो भी सकती है।
- यह सच है कि प्रचीनकाल में वैदिकों में बलि का महत्व था, परन्तु इस बात का कोई भी प्रमाण हमे प्राप्त नही है कि यह महत्व समाज के सभी लोगों के लिये समान था।
- यह सिध्दान्त इस बात को भी स्पष्ट नही करता कि विभिन्न जातियों में खान–पान और विवाह सम्बन्धी निषेध क्यों है।

जाति–प्रथा के उपर्युक्त व्यवहारिक पक्ष श्री। होकार्ट के सिध्दान्त से इस कारण निकल गए कि उन्होंने यहॉ आकर भारतीय जाति–प्रथा का अध्ययन कभी नही किया था।

सेनार्ट का सिध्दान्त :

धार्मिक कार्य करनेवाले पुजारियों ने अपनी पवित्रता को बनाये रखने तथा अपने को सुप्रतिष्ठित करने के लिये अपने नैतिक बल के प्रयोग के द्वारा धर्म के आधार पर अपनी स्थिति को सबसे उपर रखते हुये जाति–प्रथा का निर्माण किया।

जाति–प्रथा की उत्पत्ति आर्यो के इन्ही विचारों से हुई है और इसी शुध्दता व पवित्रता की धारक के आधार पर खाने–पीने के सम्बन्ध में निषेध तथा अन्तर्विवाह के नियमों का विकास हुआ है। संक्षेप में यह श्री सेनार्ट का धार्मिक सिध्दान्त है।

समीक्षा : श्री. सेनार्ट के इस कथन के समर्थन में कोई वैज्ञानिक प्रमाण नही है कि पूजा विधियों की पवित्रता और खत की शुध्दता को बनाए रखने की धारणा केवल आर्य परिवारों की अनोखी विशेषता है। मानवशास्त्रीय अध्ययनों से स्पष्ट पता चलता है कि अनेक आदिम समाजों के परिवारों में भी ये विशेषतायें पाई जाती है।

4. व्यावसायिक सिध्दान्त

पेशों के आधार पर जाति–प्रथा की उत्पत्ति की व्याख्या नेसफील्ड ने प्रस्तुत की।

उनके अनुसार 'पेशा और केवल पेशा हो, जाति प्रथा की उत्पत्ति के लिए उत्तर दायी है।''[13]

समीक्षा : श्री. हट्टन का कथन है कि अगर पेशों के आधार पर ही उॅच–नीच का भेदभाव है तो क्या कारण है कि देश के विभिन्न भागों में रहनेवाले एक ही तरह के पेशे करनेवाले व्यक्तियों के सामाजिक स्थरों में इतना अन्तर पाया जाता है। उदा। दक्षिण भारत मे खेती करनेवाली जातियों का स्थान काफी नीचा है, परन्तु उनकी भारत में अगर उॅचा नही तो भी संम्माननीय अवश्य है। क्या भारत वर्ष मे जितने की लोग खेती करते है सब एक ही जाति के है। ऐसा कदापि नही।

डॉ. मजूमदार का कथन है इस सिध्दान्त की एक बडी कमी यह है कि इसमें प्रजातीय दृष्टिकोण की भी अवहेलना की गई है। जाति–प्रथा की उत्पत्ति में प्रजातीय भिन्नताओं की उपेक्षा उचित न होगी।

उद्‌विकासीय सिध्दान्त (Evolutionary Theory)

इ. डेनिजल इबेटसन :

ने इस सिध्दान्त का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार, ''जाति–प्रथा की उत्पत्ति चार वर्णो के आधार पर नही बल्कि धार्मिक संघो से हुई है। आर्थिक वर्ग से आर्थिक संघ और संघ से जाति का विकास हुआ है।

समीक्षा : हट्टन के अनुसार श्री। इबेटसन का यह सिध्दान्त सही इसलिए नही है क्योंकि व्यावसायिक संघ दुनिया के प्रायः सभी समाजों में पाये जाते है। फिर क्या कारण है कि जाति–प्रथा की उत्पत्ति केवल भारत में ही हुई। पेशा जाति–प्रथा के विकास में मदद करने वाले एक अंग है, न कि उसे जन्म देने वाली माता।

6. प्रजातीय सिध्दान्त (Racial Theory)

इस सिध्दान्त को रखनेवाले विदेशी लेखकों में सर्वश्री मॅकाइवर, मॅक्स वेबर, कॉबर आदि है और स्वदेश में सर्वश्री एस।सी।राय, एन।के।दत्ता, घुरिये, मजुमदार आदि का नाम उल्लेखनीय है।

उपरोक्त अध्ययनकर्ताओं में से श्री। रिजले, डॉ।घुरिये तथा डॉ।मजुमदार के सिध्दान्त पर विचार करेंगे।

अ) रिजले का सिध्दान्त :

श्री. रिजले के सिध्दान्त का मूलाधार 1. प्रजातीय भिन्नता और 2. अनुलोम विवाह–प्रथा है। आपके अनुसार जाति–प्रथा की उत्पत्ति इण्डो–आर्यन प्रजाति के फारस मे उनका समाज चार भागों में विभाजित था। विभाजन के इस सिध्दान्त को आर्यो ने भारतीय समाज पर भी लागू किया। इसके अतिरिक्त यहॉ के मूल निवासियों (जिनको कि आर्यो ने हराया था) और आर्यो में अनेक सांस्कृतिक व प्रजातीय या शारीरिक भिन्नतायें थी, जिनके कारण वे दोनों पूर्ण रूप से घूल–मिल नही पाए और उनमें पृथकता बनी रही।

दूसरी और, चूंकि आर्य लोग आक्रमणकारी के रूप में भारत में आये थे, इस कारण उनके पास स्त्रियों की नितारन्त कमी थी। इस कमी को पूरा करने के लिए उन्होंने एक योजना बनाई जिसके अनुसार आर्यो ने यहा के मूल निवासियों की लडकियों से अपने लडको के विवाहों को स्विकार किया और इस प्रकार अनुलोम विवाह प्रथा–को जन्म दिया। परन्तु साथ ही आर्यो ने अपनी लडकियों का विवाह मूल–निवासियों के लडकों के साथ करना स्वीकार नही किया और इस प्रकार 'प्रति–लोम' विवाह के द्वारा प्रजातीय मिश्रण के फलस्वरूप ही विभिन्न जातियॉ उत्पन्न हुई और उस उत्पत्ति में मूल निवासियों तथा आर्यों में पाई जाने वाली अनेक सांस्कृतिक और प्रजातीय निम्नतायें सहाय्यक सिध्द हुई, क्योंकि इन भिन्नताओं के कारण ही उन दोनों के लिये एक–दुसरे के साथ पूर्ण रूप से घूल–मिल जाना सम्भव न हुआ। संक्षेप में जाति–प्रथा का आधार प्रजातीय ही है।

(ब) घुरिये का सिध्दान्त

घुरिये के अनुसार, जाति–प्रथा के कुछ पहलुओं का जन्म गंगा के मैदान में हुआ था, क्योंकि यही पर ब्राह्मणों से सम्बन्धित इण्डो–आर्यन सभ्यता का विकास हुआ था। इण्डो–आर्यन प्रजाति भारत में ईसा के 2500 वर्ष पूर्व आई और यहॉ के आदिवासियों को हराकर उन्हे दास ईरानी भाषा में जिसका अर्थ 'शत्रु' है, कहंकर सम्बोधित किया।

- धार्मिक पवित्रता की भावना और अपनी विजयपर गर्व होने के कारण इन लोगों ने यहॉ के आदिवासियों को सदैव ही अपने से दूर रखा।
- भारत में आने पर उन्होंने सबसे पहले यहां के आदिवासीयों से बने शूद्रों को अपनी धार्मिक पूजा आदि से अलग कर दिया और उनके साथ विवाह करने पर कठोर प्रतिबन्ध लगाया।
- इस प्रकार डॉ।घुरिये के मतानुसार जाति–प्रथा के विविध तत्व पहले–पहले आर्यो के उन प्रयत्नों के फल है जोकि उन्होंने भारत के आदिवासियों ओर शूद्रों की ब्राह्मण सभ्यता के धर्म और सामाजिक संसर्ग से अलग रखने के लिए किए।

- डॉ। घुरिये के अनुसार अन्तर्विवाह की उत्पत्ति भी सर्वप्रथम गंगा के मैदान मे रहनेवाले ब्राह्मणों में हुई थी। वही से अन्तर्विवाह की धारना और जाति–प्रथा के अन्य तत्व ब्राह्मणों के अनुयायिओंने देश के दूसरे भागों में फैलाए।
- शारीरिक शुध्दता और सांस्कृतिक दृढता को बनाए रखने के लिए ब्राह्मणे के द्वारा किए गए प्रयत्नों के फलस्वरूप ही विभिन्न वर्ग एक–दूसरें से अलग रहे और जाति–प्रथा की संरचना का निर्माण किया। इस प्रकार जाति–प्रथा को जन्म देने वाले ब्राह्मण थे।

  दूसरे शब्दों में डॉ।घूरियें के अनुसार 'जाति–प्रथा'' इण्डों–आर्यन संस्कृति के ब्राह्मण का बच्चा है।।'[14]

(क) मजूमदार का सिध्दान्त

श्री. मजूमदार के अनुसार 'जाति–प्रथा' की उत्पत्ति का पता लगाने के लिये संस्कृत के शब्दों का सहारा लेना चाहिये। ऐसा ही एक शब्द वर्ण है। संस्कृत मे जाति–प्रणाली के लिये प्रारम्भ में वर्ण शब्द का प्रयोग किया जाता था, जिसका अर्थ 'रंग' और 'वर्ग' दोनो होता है। प्रारम्भ में तीन उंचे वर्ण एक दूसरे से रंग के आधारपर भिन्न थे, जो इण्डो–आर्यन प्रजाति तथा भारत के आदिवासी, प्राग–द्राविड और आदि–भू–मध्य सागरीय प्रजातियों के मिश्रण से बने थे। ऐसे प्रजातीय सम्मिश्रण के अनेक कारण थे –

अ) आक्रमणकारी समूह में स्त्रियों की कमी,

ब) इनके घुमन्तू जीवन में भारत के आदिवासियों का स्थायी जीवन का आकर्षण,

क) द्रविड संस्कृति की अति उन्नत अवस्था, मातृ समात्मक प्रणाली, देवियों की पूजा, संस्कार, मन्दिर, शिक्षा आदि अनेक कारणों से प्रजातीय सम्मिश्रण हुए।

- दूसरी ओर, इन प्रजातियों के बीच, संस्कृतियों के संधर्ष और प्रजातियों के सम्पर्क नें भारत में विभिन्न सामाजिक समूहों को पुष्ट किया और अन्तर्विवाही समूहों का निर्माण हुआ, जिन्होंने अपनी प्रजातीय शुध्दता और सांस्कृतिक एकता को पूर्ण सम्मिश्रण से रक्षा करने के प्रयत्न किए।
- इसी प्रयत्न में उपर के तीन वर्णो या जातियों ने महत्वपूर्ण पेशों पर अपने को दृढ रखकर अपनी उंची स्थिति को स्थयी बनाए रखा और दूसरों को इन पेशों को चुनने का स्वतन्त्रता न दी। इस वर्ण– परम्परा को समाज पर लादने के लिये ब्राह्मणों के प्रभावों को काम में लाया गया।
- मजूमदार कहते है ''जाति की स्थितिया पद इस बात पर निर्भर है कि उसमें किस परिणम तक रक्त की शुध्दता है और कहॉ तक वह दूसरे सामाजिक समूह से पृथक रह पाया है।[15]
- ब्राह्मणो और जनजातीय समूह ने अपनी प्रजातीय शुध्दता को सबसे अधिक बनाए रखा है। इन दोनों समूहों के बीच में अगणित सामाजिक समूह है। जिनमे रक्त की शुध्दता और सांस्कृतिक सम्बन्धों में भेद पाये जाते है। इस सारी प्रणाली को जाति–प्रथा कहा जाता है।

समीक्षा :

प्रजातीय सिध्दान्तो की आलोचना जिन विद्वानों ने की है उनमें हट्टन का स्थान सर्वप्रथम है।

- उनके अनुसार प्रजातीय सिध्दान्त जाति–प्रथा के अन्तर्गत पाए जाने वाले खाने–पीने के सम्बन्ध में निषेधों पर कोई प्रकाश नही डालता।
- अमेरिका और दक्षिणी अफीका मे नीग्रो प्रजाति के लिये अलग होटल, जलपानगृह आदि है, पर उनके छू लेने से किसी प्रकार की अपवित्रता नही होती। परन्तु भारत में अछूतों के छू लेने से भोजन आदि उंची जातियों के लिये अपवित्र क्यो हो जाता है, इसकी कोई भी व्याख्या प्रजातीय सिध्दान्त में नही मिलती।
- श्री. हट्टन ने दूसरी समीक्षा यह की है कि अगर प्रजातीय और सांस्कृतिक भिन्नताएं व सम्पर्क ही जाति–प्रथा की उत्पत्ति का कारण है तो भारत में बाहर से आये हुए मुसलमान और ईसाई भी, जिनमें दोनों प्रकार की भिन्नताए पाई जाती थी, क्यों नहीं एक जाति बन सके ? इसकी व्याख्या देने में यह सिध्दान्त पूर्णतया असफल रहा है।

- हट्टन के अनुसार प्रजातीय भेद और पक्षपात के आधार पर अनुलोभ विवाह को समझाया जा सकता है पर इससे जाति–प्रथा की उत्पत्ति कैसे हुई, यह समझ में नही आता।
- प्रजातीय भेद और पक्षपात संसार के अन्य देशों में भी पाए जाते है पर वहां कही भी जाति–प्रथा का विकास नही हुआ है। इसका क्या कारण है, यह प्रजातीय सिध्दान्त नही बतलाता। श्री हट्टन के मतानुसार जाति–प्रथा की अनेक विशेषतायें ऐसे भागों में देखने को मिलती है। जहां ब्राह्मणों का कोई प्रभाव नही है।[16]

7. आदिम संस्कृति का सिध्दान्त

Theory of Primitive Culture अपनी 1931 की जनगणना की रिपोर्ट में हट्टन ने प्रजातीय सिध्दांत की समीक्षा करते हुए इस सिध्दांत को प्रस्तुत किया है।

- उनका कहना यह है कि जाति–प्रथा भारत की एक अनोखी संस्था है और इस रूप में इसका विकास भारत को छोडकर और कही भी नही हुआ है, इसलिये जाति–प्रथा की उत्पत्ति के कारणों को भारत में ही ढूढंना चाहिए।
- भारत में ही कुछ ऐसे विशिष्ट कारक अवश्य ही क्रियाशील रहे होंगे जिससे जाति–प्रथा का विकास भारत में ही हुआ है अगर अन्यत्र कही भी नही।
- इस विशाल देश के दुर्गम कोनों में आज भी अनेक ऐसे स्थान है जोकि हिन्दू, बौध्द या इस्लाम के प्रभाव से बिल्कुल मुक्त है और जहॉ की जाति–प्रथा को उस रूप में नही लिया जाता है जिस रूप में उसे हिन्दू लोग लेते है, फिर भी वहां कुछ ऐसी प्रथाए व विशेषताए देखने को मिलती है जोकि जाति–प्रणाली के विभिन्न पहलुओं से मिलती–जुलती है।
- इन स्थानों में प्रत्येक गॉव एक स्वतन्त्र राजनीतिक इकाई है और प्रत्येक गॉव के व्यक्ति अधिकतर एक ही पेशे को करते है अर्थात पेशा और अन्य आधारों पर वहॉ भी कुछ–न–कुछ सामाजिक विभाजन है। इससे स्पष्ट है कि जाति–प्रथा के कुछ तत्व आर्यो के आने से पहले ही भारत वर्ष में मौजूद थे।
- आर्यो ने यहॉ आकर इस अस्पष्ट विभाजन को और भी स्पष्ट बनाया और अपनी स्थिति को सबसे उपर रखा। यही जाति–प्रथा की प्रारम्भिक अवस्था है।
- जहॉ तक खाने–पीने और विवाह सम्बन्धि प्रतिबन्धों का प्रश्न है, उनको समझाने के लिए श्री. हट्टन ने माना का सहारा लिया।
- 'माना' एक अवैयक्तिक अलौकिक तथा अदृश्य शक्ति है जो प्रत्येक चीज में एक विशिष्ट रूप और मात्रा में पाई जाती है, जो स्पर्श द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति या वस्तु से दुसरी मे आ–जा सकती है और जो अच्छे–बुरे दोनों तरह के फल दे सकती है अर्थात उससे हमे हानि और लाभ दोनों ही हो सकते है।
- इसलिये 'माना' की शाक्ति पर विश्वास रखने वाले लोग अपरिचित व्यक्तियों के स्पर्श से डरते है। भारत की नागा जनजाति में ऐसे ही डर का आधार पर खाने–पीने और विवाह के सम्बन्ध में अनेक निषेध पाये जाते है।
- आक्रमणकारी के रूप में जब आर्य लोग भारत वर्ष में आए तो उसके सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव ने भारतीय समाज में उंच–नीच के भेद–भाव को पनपाया।
- यह भेद–भाव सरलता से पनप भी सका, क्योंकि एक और श्रेणियॉ थी और दूसरी और भारत के मूल निवासियों में भी 'माना' की शक्ति में विश्वास के आधार पर अनेक निषेध और उसी अनुसार विभिन्न समूहों का विभाजन था।
- परन्तु भारत के मूल निवासियों के विभिन्न समूहो में उॅच–नीच की भावना नही थी।
- यह आर्यो के सामाजिक प्रभाव के कारण आरम्भ हुई।
- यही आधार मानकर श्री. हट्टन कहते है की

1) निषेधों के प्रति जनजातीय मनोभाव
2) पेशों के आधार पर समाज का विभाजन जैसा कि आसाम की नागा जनजातियों में पाया जाता है
3) समस्त विचित्र और अपरिचित वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति कुसंस्कार और
4) इण्डो–आर्यनों की वर्ण–प्रणाली तथा जनजातियों की सामाजिक प्रणाली की अन्तः क्रिया ने ही भारतीय समाज के ढांचे का आकार बनाया है।

■ इन्ही आधारों पर भेदाभेद जब कठोर दो गए तो जाति–प्रथा की उत्पत्ति हुई

समीक्षा : श्री. शरतचन्द्र राय 'माना' के सिध्दान्त के एक विस्तृत अध्ययन के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि 'माना' की धारणा दुनिया की सभी जगह, सभी जनजातियों मे पाई जा सकती है। पर कही भी इसके आधार पर सामाजिक समूह नही बने है और न ही आर्यो के आने से पहले इस प्रकार के सामाजिक विभाजन की कल्पना की जाती है।

■ हट्टन ने धर्म, जाति, जादू, पुनर्जन्म, आर्थिक कारण, प्रजातीय घृणा, सांस्कृतिक संघर्ष, राजनीतिक विजय पर प्रकाश डाला है। इससे यह पता चलता है कि किसी निश्चित कारण के कारण जाति–प्रथा की उत्पत्ति नही हुई है।

■ अतः श्री. हट्टन के सिध्दान्त को किसी एक निश्चित दायरे के अन्तर्गत नही लाया जा सकता।

8 सांस्कृतिक एकीभाव का सिध्दान्त

Theory of Cultural Integration इस सिध्दान्त के प्रवर्तक रायबहादूर शरतचन्द्र राय है।[17]

उनके अनुसार भारत की जाति–प्रथा भारत की विभिन्न प्रजातियों की सांस्कृतिक विशेषताओं के मिलन और अन्तः क्रिया का फल है।

विभिन्न प्रजातियों की सांस्कृतिक विशेषताएं इस प्रकार थी–

1) इण्डो–आर्यन की वर्ण व्यवस्था, कर्म की धारणा और शक्ति पर विश्वास
2) द्रविड लोगों में पेशों के आधार पर वर्ण–व्यवस्था थी और साथ ही यह विश्वास था कि पुजारी–जादूगरों में कुछ विशिष्ट अलौकिक शक्ति है।
3) उसी प्रकार प्राग–द्रविडों में जन जातीय सामाजिक व्यवस्था थी और साथ ही उनकी संस्कृतिक में आमतत्व की धारणा बहुत महत्वपूर्ण थी।

■ इन तीनों संस्कृतियों में पाई जानेवाली विभिन्न धारणाओं और विशेषताओं ने एक दूसरे को प्रभावित किया और सबने मिलकर जाति–प्रथा के विकास मे योग दिया।

समीक्षा : इस सिध्दान्त के अन्तर्गत भारत की विभिन्न प्रजातियों की संस्कृतियों के एकीभाव की जो कल्पना की गई है उसका कोई निर्भर योग्य ऐतिहासिक प्रभाव नही मिलता जिसके कारण इस सिध्दांत को वैज्ञानिक आधार पर स्वीकार करना कठिन होता है।

जाति व्यवस्था के परिणाम

जातिव्यवस्था के हजारों वर्षों में भारतीय लोगोपर अलग–अलग प्रकार के परिणाम हये है। संक्षेप जातिव्यवस्था के परिणाम निम्नप्रकार दर्शाये जा सकते है।

■ जातिव्यवस्था एक जाति के सदस्यों की वह भावना जो अपनी जाति के हित के सम्मुख अन्य जातियों के सामान्य हितों की अवहेलना और प्रायः हनन करने को प्रेरित करती है।

■ अपनी जाति का ही कल्याण और प्रगति हो यही चिन्ता उन्हे देश या समाज या जातियों के सामान्य हितों का ध्यान नही रखने देती है।

■ मानव भावनाओं का यह संकुचित रूप ही जाति व्यवस्था का कुप्रभाव/परिणाम है।

■ जातिव्यवस्था के दो पहलू है। एक भावना तथा दूसरा कर्म/भावना मनोवैज्ञानिक है तो कर्म–व्यावहारिक।

- मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से जातिव्यवस्था से प्रभावित व्यक्ति अपनी भावनाओं को अपनी ही जाति में केन्द्रित कर देता है और उन्ही के कल्याण के लिये चिन्ता करता है।
  यह चिन्ता या इस प्रकार की भावनायें संकुचित है क्योंकि यह समग्र समाज के सामान्य हितों का ध्यान नही रखता है।
- इस दृष्टिकोण से जातिव्यवस्था को समाज–विरोधी (Anti-social) भी कहा जा सकता है।
- जातिव्यवस्था से प्रभावित व्यक्ति अपनी ही जाति के कल्याण के लिए सोचते–विचारते ही नही है बल्कि उसी के अनुसार कार्य भी करते है अर्थात अपने विचारों व भावनाओं को एक व्यावहारिक रूप भी देते है।
- जातिय शिक्षा संस्थान आदि खोलकर या अस्पताल बनवाकर या नौकरी के लिये भर्ती करने के समय अपातपूर्ण व्यवहार करके अपनी जाति के व्यक्तियों को लाभ पहुंचाने के लिए जाते है वे सभी जाति व्यवस्था के व्यावहारिक पहलू के अन्तर्गत ही आते है।
- जाति व्यवस्था प्रजातन्त्र के लिए घातक है।
  जातिव्यवस्था के कारण सभी जातिक लोगों को समुचित भागीदारी नही मिलती।
  जाति व्यवस्था से पीडित जातिवादी व्यक्ति अपनी जाति के सदस्यों को हर प्रकार की सुविधा प्रदान करने के लिए अनेक अनुचित और अनैतिक उपयोंका सहारा लेते है। इससे सामाजिक पतन भी होता है।
  जातिव्यवस्था ने स्वयं ही भारतीय समाज को अनेक भागों में बॉट दिया है।
  जातिवादी मानसिकता के कारण विभिन्न जातियों के बीच जब तनाव या संघर्ष कटु हो जाता है, सामुदायिक भावना का जो संकुचित रूप दिखाई देता है वह वास्तव में भयंकर और अहितकर है। जातिव्यवस्था राष्ट्रीय एकता और प्रगति के लिए घातक है।

  जातिव्यवस्था से मानव और मानवता का बड़ा भारी अपमान होता है।[18]

जातिव्यवस्था मजबूत करनेवाले मनुस्मृती के नियम तथा उसके परिणाम

हिन्दु धर्म का वैचारिक आधार रामायण, महाभारत, पुराण, भगवदगीता, मनुस्मृती आदि धार्मिक ग्रंथो का माना जाता है। उनमें जो भी प्रावधान किये गये उसपर अमल कराया गया। ये नियमोंसे मानवता अपमानित हो रही, अवसार नकारे जा रहे, अज्ञानता बढ़ रही, क्रूरता का विकास हो रहा, भाईचारे का गला दबाया जा रहा, निर्धनता बढ़ रही, अंधश्रध्दा और निर्भरता समाज में फैल रही इसकी ओर समाज व्यवस्था से लाभ प्राप्त करने वाले समाज कर्जधारोंने कभी की राष्ट्रहित में नही सोचा। जातिव्यवस्था से भारत अपनी रक्षा भी ठीक से नही कर सका। मुस्लिम, अंग्रेज जैसे विदेशी लोगों ने भारत को पराजित किया और वे स्वयं भारत के शासक बन गये।

जातिव्यवस्था को बढ़ावा और मजबूती प्रदान करनेवाले मनुस्मृती के ये प्रावधान देखे,

1) शूद्र शिक्षा नही ग्रहन कर सकता।
2) शूद्र सम्पत्ति संचित नही कर सकता।
3) शूद्र सम्मान पूर्वक जीवन नही जी सकता।
4) शूद्र सार्वजनिक कुओं, जलाशयों तथा नदियों के उन घाटों का जिनका इस्तेमाल सवर्ण करता है, उसका इस्तेमाल शूद्र नही कर सकता।
5) शूद्र घोडे की सवारी नही कर सकता।
6) शूद्र सोने, चान्दी, जवाहरात का प्रयोग नही कर सकता।
7) शूद्र रेशमी कपडे अथवा कीमती कपडे का इस्तेमाल नही कर सकता।
8) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सेवा करना यही शूद्र का धर्म है। सेवा के ऐवज में उन्हें मजूरी मिले या ना मिले।
9) सवर्णो की यह मान्यता रही है कि शूद्र जिस राज्य से गुजरता है वह अपवित्र हो जाता है। इस लिए वह अपने कमर में झाडू बांध कर चले।
10) अछूत को देखकर ब्राह्मण अपवित्र हो जाता है। अछूत गले में घंटी बॉध कर चले।

11) अछूत जहॉ थूंकता है वह स्थान अपवित्र हो जाता है, इसलिए अछूत गले में बर्तन लटका कर चले ताकि उसी बर्तन में वह थूंके।
12) शूद्र धार्मिक स्थलों पर नही जा सकता उसके प्रवेश से वह स्थान अपवित्र हो जाता है।
13) शूद्र और अछूत अच्छे मकान का उपयोग नही कर सकता।
14)शूद्र और अछूत की बस्तियॉ गावों से दूर रहेंगी।
15) शूद्र और अछूत जूठन आदि खावे।
16) शूद्र और अछूत टूटा–फूटा बर्तन रखे।
17) शूद्र और अछूत गद्दे का सोने के लिए इस्तेमाल नही कर सकता।
18) शूद्र और अछूत जो भी कमाई करता है उस धन का मालिक ब्राह्मण होता है।
19) शूद्र और अछूत दूध देने वाला जानवर नही रख सकता।
20) शूद्र और अछूत अस्त्र–शास्त्र नही रख सकता।
21) शूद्र और अछूत का धर्म है कि वह दोनो हाथ जोडकर तथा कमर तक झुककर किजों का अभिवादन करे।
22) शूद्र उपनयन संस्कार नही कर सकता।
23) शूद्र यहा स्थल तक नही जा सकता।
24) शूद्र और अछूत वेदाध्याय नही कर सकता।
25) शूद्र वेद नही सून सकता।[19]

जातिव्यवस्था की वर्तमान स्थिति

_____सन 1813 ई। का चार्टर एक्ट (Charter Act of 1813 A.D.) भारतीय जातिव्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए अंग्रेज सरकार द्वारा बनाया गया 1813 ई। का चार्टर एक्ट महत्वपूर्ण साबित हुआ।[19]

इस चार्टर एक्ट की प्रमुख व्यवस्थायें निम्न प्रकार की गयी–

1) भारत का व्यापार पंचम रिपोर्ट की शिफारिशों के विरूध्द भी सभी अंग्रेजो के लिए खोल दिया गया।
2) कम्पनी को 20 वर्ष तक और चीन से व्यापार करने की आज्ञा मिल गई।
3) मिशनरीज को स्वतन्त्रतापूर्वक भारत आने जाने की आज्ञा मिल गई।
4) भारतीय मे शिक्षा–प्रसार हेतू प्रत्येक वर्ष के लिए पृथक पूंजी रखी गई।
5) एग्लिंकन चर्च की भारत में स्थापना हुई और कलकत्ता के लिए एक विशेष बिशप नियुक्त हुआ।
6) योरोपियनों को भारत में बसने की आज्ञा मिली।

इस एक्ट द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त हो गया।[20]

भारतीय जातिव्यवस्था के अंतर्गत चातुर्वण्य नियमों के अनुसार शुद्र वर्ण के लोगोंको पढ़ाई का अधिकार नही था। अंग्रेजो के द्वारा 1813 में बनाये गये चार्टर एक्ट की धारा Iv के मुताबिक चातुर्वण्य का शुद्रों को शिक्षा से वंचित रखने का नियम समाप्त हुआ और शुद्र–अतिशुद्रों के लिए शिक्षा के द्वारा खोल दिये गये। इसी कानून के आधार पर महात्मा जोतीराव फुले ने 1848 में शुद्र–अतिशुद्र तथा सभी जातियों की महिलाओं के लिए स्कूल खोले। महात्मा फुलेने 19/10/1882 को हंटर कमिशन के सामने बहुजन समाज की ओर से निवेदन प्रस्तुत किया तथा सरकारी नौकरी में बहुजनों में भागीदारी देने की मांग की। यदि यह अंग्रेजोद्वारा बनाया गया कानून ना होता तो यह म. फुले द्वारा शिक्षा प्रारंभ करनेवाला आंदोलन शुरू नही हो सकता था।[21]

अंग्रेजो द्वारा बनाये गये कानून

1) रेग्यूलेटिंग एक्ट (Regulating Act 1773)
2) चार्टर एक्ट, 1793 (Charter Act of 1793 A.D.)
3) चार्टर एक्ट 1813 (Charter Act of 1813 A.D.)
4) चार्टर एक्ट 1833 (Charter Act of 1833 A.D.)
5) चार्टर एक्ट 1853 (Charter Act of 1853 A.D.)
6) अधिनियम 1858 (Act 1858 A.D.)

7) भारतीय परिषद अधिनियम 1861 (The Indian Council Act, 1861)
8) भारतीय परिषद अधिनियम 1892 (The Indian Council Act, 1892)
9) मिन्टों मोर्ले सुधार 1909 (Minto Morley Reforms, 1909)
10) भारत शासन अधिनियम 1919 (Govt. of India Act, 1919)
11) भारत शासन अधिनियम 1935 (Govt. of India Act, 1935)

अंग्रेजो के शासनकाल के दौरान ही भारत की जातिव्यवस्था समाज का विभाजन करनेवाली कुव्यवस्था है यह विचार महात्मा जोतीराव फुले ने 1848 में ही प्रतिपादित किये। उनका समर्थन राजर्षी शाहू महाराज ने 1894–1922 तक निरंतर किया राजर्षी शाहूने 26/07/1902 को जाति के आधार पर आरक्षण सुरू किया और दक्षिण भारत में यह जातिव्यवस्था में परिवर्तन को बढ़ावा देनेवाला आंदोलन पेरियार रामास्वामी नायकर के नेतृत्व में 1925–1973 तक निरंतर चला। डॉ।बी।आर। अम्बेडकर के नेतृत्व में 1920–1956 तक यह जाति व्यवस्था को कमजोर करने वाला आंदोलन सफलता पुर्वक आगे बढा। इस प्रकार 1848–1956 तक निरंतर 108 वर्षोतक यह परिवर्तन का आंदोलन चलते रहा।

जातिव्यवस्था कमजोर हुई

कठोर समझी जानेवाला जातिव्यवस्था भारत शासन अधिनियम 1935 के अंतर्गत अछूत जातियॉ तथा आदिवासीयोंकी अनुसूचि बनायी गई तथा उन्हे कानून से मान्यता मिली। उन्हें सरकारी सुरक्षा प्रदान की गई। 1943 में केंद्र सरकार की सेवाओं में डॉ। बाबासाहब अम्बेडकर के प्रयासों से अनुसूचित जातियॉ तथा जनजातियों को आरक्षण सुरू किया गया। 26/1/1950 को भारत में प्रजासत्ताक शासन प्रणाली प्रारंभ हुई। भारतीय संविधान में कमजोर और पिछ़डी जातियों के भलाई के लिए विभिन्न प्रावधान किये गये। उसके आधार पर संपूर्ण भारत में इन जातियों में शिक्षा लेने की चाहत पैदा होकर सरकारी नौकरियों में बड़े पैमाने पर कानूनी तौर से भरती हुये। आज जातिव्यवस्था के पिडित समाज समूह आरक्षण की सुविधा संविधान में अंतर्भूत होने के कारण अभय बनकर आगे बढते हुये जाति व्यवस्था में परिवर्तन लाने की वकालत करने की कोशिसें प्रारंभ हो गई है।[22]

सामाजिक तथा राजनीतिक लोकतंत्र की पृष्ठभूमि

अंग्रेजो के शासन काल में बहुजन समाज (एस।सी।, एस।टी।, पिछडे तथा धार्मिक अल्पसंख्यक) के विभिन्न समाज समूह जानकार तथा जागृक हुये। अंग्रेजी कानून के आधार पर समानता तथा स्वाभिमान के लिए आंदोलन गतीमान हुये। चातुर्वण्य का सिध्दान्त बहुजन समाज ने नकार दिया। म।फुले ने सर्वप्रथम हंटर कमिशन के सामने बहुजन समाज की दर्दनाक कहानी बयान की।[23]

''जातसंख्येच्या प्रमाणात कामे नेमा ती हीच खरी न्यायाची रिती।'' यह भागीदारी का सिध्दान्त महात्मा जोतीराव फुले ने भारत में पहली बार प्रस्तुत किया।[24] सामाजिक तथा राजनीतिक लोकतंत्र का यह दृष्टिकोन कोल्हापूर के शासक तथा छत्रपती शिवाजी महाराज के वंशज राजर्षी शाहू महाराज ने अपने कोल्हापूर संस्थान में इस सामाजिक तथा राजनीतिक लोकतंत्र की सुरूवात 26 जुलै 1902 को कर दी।[25] आज यह आरक्षण का आंदोलन 105 वर्ष का हो चुका है।

अंग्रेजो के द्वारा बनाये गये कानूनों से यह सामाजिक तथा राजनीतिक लोकतंत्र का आन्दोलन गतीमान बनने प्रेरणा मिलती रही। इसको गतीशील बनाने में मिन्टों–मोर्ले सुधार (1909), भारत शासन अधिनियम 1919 तथा भारत शासन अधिनियम 1935 का बड़ा भारी योगदान रहा है।[26]

फुले–शाहू–पेरियार–अंबेडकर का सामाजिक तथा राजनीतिक लोकतंत्र स्थापित करणे का आंदोलन जाति व्यवस्था का अंत करने के लिये कांशीरामने राष्ट्रीय स्तर पर गतिमान किया था।[27]

संदर्भ –

1. एस. आर. बाजपेयी, सामाजिक अनुसन्धान तथा सर्वोक्षण, किताब घर, कानपूर, पृ. 3
2. उपरोक्त, पृ. 9
3. उपरोक्त, पृ. 235
4. Mandal Commission Report, 1980, P. 61
5. Robert Bierstedt, The Social order, McGraw- Hill Book Co., New York, 1957, P. 407
6. Sir Herbert Risley, The People of India, London, 1915, P. 5
7. E. Blunt, Social Service in India, His Majesty's Stationary, Office London, 1946, P. 50
8. एस.व्ही.केतकर, हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इंडिया, इतहाका, न्यूयार्क, 1909, पृ. 15
9. डूमांट ॲन्ड डी.पोकाक, कान्ट्रीब्युशन टू इंडियन सोसालॉजी नं.2 माऊटेन ॲन्ड कं. पॅरिस, 1948, पृ. 9
10. एन.के.दत्ता, ओरिजन ॲन्ड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इंडिया व्हॉलूम–1, द बुक कं कलकत्ता, 1931, पृ. 3
11. ई.ए.वेस्टरमार्क, हिस्टरी ऑफ हयुमॅन मॅरेज, 1921, फिफ्थ एडिशन, व्हॉलूम–II, पृ. 59.
12. मॅकाइवर ॲन्ड पेज, सोसायटी, मॅकमिलन ॲन्ड कं. लंडन, 1950, पृ. 348.
13. ऑगबर्न ॲन्ड निमकॉफ, ए हैन्ड ऑफ सोसॉलाजी, रेक्टलेज ॲन्ड केगन पॉल, लंडन, 1956, पृ. 210.
14. जी.एस.घुरिये, कास्ट, क्लास ॲन्ड आंकुपेशन, पापुलर बुक डेपोट, बॉम्बे, 1961, पृ. 172.
15. नेसफील्ड, ब्रिफ हयुव ऑफ द कास्ट सिस्टिम पृ. 7
16. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, भारतीय समाज व संस्कृति, 1999, पृ. 102.
17. उपरोक्त, पृ. 103
18. उपरोक्त, पृ. 105
19. कमलकान्त सिंह, क्या यही हिन्दू धर्म है, डॉ.भीमराव अम्बेडकर शिक्षण एवं मानव विकास सेवा संस्थान पूर्वाचल, सीताराम, आजमगढ़, 2003, पृ. 13–14.
20. महावीर सिंह त्यागी, भारतीय शासन और राजनीति राजीव प्रकाशन, मेरठ, 1989, पृ. 19.
21. उपरोक्त, पृ. 19
22. कांशीराम का चर्मकार परिवर्तन परिषद में भाषण 20/5/1998 बहुजनों, भारत के शासक बनो, संपादक पी. एस.चंगोले पृ. 44.
23. उपरोक्त, पृ. 46
24. धनंजय कीर, महात्मा जोतीराव फुले, पॉप्युलर प्रकाशन 1992, पृ. 196
25. धनंजय कीर, राजर्षी शाहू छत्रपती, पॉप्युलर प्रकाशन 1992, पृ. 122.
26. महावीर सिंह त्यागी, भारतीय शासन और राजनीति, राजीव प्रकाशन, मेरठ, 1989, पृ. 259.
27. मनोहर आटे, द एडिटोरियल्स ऑफ कांशीराम, बहुजन समाज पब्लिकेशन, हैद्राबाद, 1997, पृ. 18.